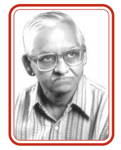
(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-24 मार्च-2014 अंक-3

यदि देह पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।
अधुनैव व सुखी शान्तः बन्धमुक्तो भविष्यति॥

आत्मज्ञान के स्वरूप को अष्टावक्र जी, राजा जनक के प्रति अब मुक्ति के स्वरूप तथा उपाय को कहते है; कि यदि तुम शरीर को पृथक करके तथा चैतन्य आत्मा में विश्राम पूर्वक स्थित हो; तो तुम अभी ही सुखी, शान्त तथा बन्धन मुक्त हो जाओगे।

(अष्टावक्र गीता : 1.4)

प्रकाशक
ध्यान सत्संग सभा
पंजीकरण संख्या : 280/2013
हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346
Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

(1936-2009)

मन; सबसे अद्भुत अस्तित्व

✍ डॉ० शम्भूनाथ

मन सृष्टि का सबसे अद्भुत अस्तित्व है। प्रकृति ने हर जीव को तीन तरह की शक्तियां प्रदान की है : अनुभव शक्ति, तर्क वितरक की शक्ति और शारीरिक श्रम की शक्ति। अनुभव शक्ति मन में होती है। तर्क, वितर्क की शक्ति बुद्धि में होती है। और शारीरिक श्रम की शक्ति शरीर में रहती है। अनुभव ही सब कुछ है। यदि अनुभव न हो; तो यह कहना ही संभव नहीं है कि सृष्टि में कुछ है, अथवा नहीं।

समाज में ज्ञान का महत्व सदा ही रहा है। ईश्वरीय शक्ति का अनुभव ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। मान्यता यह है कि जिसने ईश्वर को अनुभव कर लिया, वह स्वयं ईश्वर हो गया। 'जानत तुमहिं, तुमहिं हो जाई'।

सृष्टि का विस्तार कहां से कहां तक है? समझना चाहें, तो सृष्टि का विस्तार शून्य अनुभव (ईश्वर का अनुभव) की शक्ति के अन्तराल में है। अत: पूरी सृष्टि मन की अनुभव शक्ति में ही समायी हुई है।

समाज में हम देखते हैं कि समय आने पर हर बालक पिता बन जाता है। इसी प्रकार जीव को कभी-न-कभी ईश्वर स्वरूप हो जाना है। तुलसी दास जी ने लिखा है, कि हर जीवन ईश्वर का ही अंश है। ईश्वर की भांति अविनाशी है, जीव सत्, चित्, आनन्द (जो ईश्वरीय तत्व के गुण हैं), के बहुत बड़े भण्डार हैं।

ईश्वर अंस जीव अविनासी।
सत चेतन धन आनन्द रासि॥

दूसरे शब्दों में सारे जीव परमात्मा के पुत्र होने के कारण; परमात्मा बन जाने का, उनका हक है। लेखक ने विचार व्यक्त किया कि हमें मात्र अपनी अनुभव शक्ति बढ़ानी है। अर्थात् जिसकी जैसी अनुभव शक्ति है; वह वहीं से उच्च स्तर की अनुभव शक्ति की ओर, आगे बढ़ेगा। हर साधारण मनुष्य की यह मान्यता है कि जीव वह है; जो शरीर धारण करके शरीर में जीवन काल में रहता है और जब वह शरीर छोड़ता है (जैसे मनुष्य कपड़ा बदलता है), तब शरीर का जीवन काल भी खत्म हो जाता है। साधारण मनुष्य की अनुभव शक्ति यह बताती है कि जब

जीव शरीर छोड़ता है; तब प्रकृति द्वारा प्रदान की हुई दोनों शक्तियां अर्थात् अनुभव शक्ति, तर्क–वितर्क शक्ति और शारीरिक श्रम की शक्ति; शरीर से निकल जाती हैं। जहां जीव था, वहीं मन और मन की अनुभव शक्ति थी, बुद्धि और बुद्धि का अहंकार था; और शरीर को चलाने वाली दसों इन्द्रियों की शक्ति थी।

पूरी सृष्टि मन के अनुभव क्षेत्र में है। अत: परमात्मा के बेटों को अपने–अपने मन की अनुभव शक्ति बढ़ा कर; परमात्मा स्वरूप होने की ओर अग्रसर होना है। सन्त तुलसी दास ने लिखा है :–

कर्म प्रधान बिस्व कर राखा।
जो जस करई सो तस फल चाखा॥

अत: अध्यात्म शिक्षा की उच्च श्रेणी में आने के लिए कर्म मूल है, और कर्म को समझना अति आवश्यक है। आज का समाज मात्र स्थूल कर्मों को ही 'कर्म' मानता है। मन के पास विचरण के लिए दो संसार हैं। शरीर के बाहर इन्द्रिय जगत; और शरीर के अन्दर पराजगत।

अन्दर; अर्थात् इन्द्रिय और बुद्धि से परे का क्षेत्र मन सृष्टि का मूल अस्तित्व है; और कर्म जीवन का मूल अस्तित्व है। अत: कर्म मात्र मन को करना है। मन का विचरण ही कर्म है। मन का विचरण इन्द्रिय जगत में; इन्द्रिय जगत का कर्म है। और मन का विचरण पराजगत में; परा कर्म है। मन पराजगत का अस्तित्व है, इन्द्रिय जगत का नहीं। यही कारण है कि इन्द्रिय जगत के विचरण के लिए, उसे सवारी (Vehicle) की आवश्यकता है। प्रकृति ने हर मन को दस इन्द्रियां प्रदान की है। जो कि मन के लिए इस जगत की सवारी के घोड़ों के समान हैं। इन घोड़ो ंकी लगाम बुद्धि के पास रहती है।

समाज की यह अनुभूति है कि नवजात शिशु के पास मन तो है; परन्तु बुद्धि नहीं है। बालक के पास जीवन भी है जो कर्मों द्वारा ही अग्रसर होना है।

कर्म; पैदा होते ही शुरू हो जाता है।

बालक का कर्म जिस क्षेत्र में होता है, उस क्षेत्र में वह बुद्धिमान होता जाता है। बाल अवस्था में कर्म; परिस्थितियों के आधार पर मां–बाप और कुटुम्ब के

सदस्यों की बुद्धि के अनुसार होते हैं। बच्चा बड़ा होता है; और कर्मों के आधार पर किसी–न–किसी क्षेत्र की उसकी बुद्धि विकसित हो जाती है।

यह विकसित बुद्धि और मन के मिलाप से उसमें एक 'मैं' की जागृति हो जाती है। 'मैं', ही इन्द्रिय क्षेत्र के अलग–अलग पहलुओं में, दसों इन्द्रियों के माध्यम से मन को भ्रमण कराता है।

नवजात शिशु बुद्धि लेकर नहीं आता। इन्द्रिय कर्मों के आधार पर बुद्धि विकसित होती है। अर्थात् बुद्धि इन्द्रिय जगत का धन है। इन्द्रिय जगत के सारे कर्म मेहनत के कर्म होते हैं।

प्रकृति मनुष्य को थका कर निद्रा में लाती है। निद्रा में आते ही दूसरे संसार का कर्म प्रारंभ हो जाता है। निद्रा के समय मन की गतिशीलता समाप्त नहीं होती। यद्यपि उसकी अनुभव शक्ति बहुत कम हो जाती है। अनुभव शक्ति कम हो जाने के कारण, वह निद्रा के समय मन की गतिशीलता को अनुभव नहीं करता। धीरे–धीरे वह स्वप्न अवसथा को प्राप्त हो जाता है; और मन की गतिशीलता अनुभव होने लगती है। स्वप्न देखते–देखते वह इन्द्रिय जगत की जागृति को प्राप्त हो जाता है।

निद्रा के समय मन गतिशील है; और उसका 'मैं' है ही नहीं। स्वप्न के समय मन की गतिशीलता अनुभव में है; और इस समय भी 'मैं', नहीं है। इन दो अवस्थाओं में 'मैं' का न होना ही इस बात का प्रमाण है कि मन की गतिशीलता पराजगत में है।

इन्द्रिय जगत की जागृति को प्राप्त होते ही मनुष्य जागृति को प्राप्त हो जाता है। जागृति में मन के भ्रमण का अनुशासन उसके 'मैं' के पास रहता है। या यह कहें कि उसकी बुद्धि द्वारा होता है। परन्तु जब तक मन का भ्रमण परा जगत में रहता है, मन का भ्रमण 'होनी के ज्ञान', के माध्यम से होता है; तो अपने में पूर्ण है।

यह स्पष्ट है कि पराजगत में भ्रमण होने से मन की जागृति बढ़ी। इससे वह स्वप्न को प्राप्त हो गया। स्वप्न के समय मन के भ्रमण ने जागृति बढ़ा कर मन को इन्द्रिय जगत की जागृति प्रदान कर दी। भ्रमण ही कर्म है।

अत: सिद्धान्त यह निकला कि कर्म से जागृति बढ़ती है और जागृति में ज्ञान है। जागृति और चेतना पर्यायवाची हैं। इसलिए हम यह भी कह सकते हैं कि जिस क्षेत्र में कर्म होता है; उस क्षेत्र की चेतना बढ़ती ही जाती है। और इस चेतना में ही उस क्षेत्र का ज्ञान होता है। अत: मनुष्य इस क्षेत्र का ज्ञानी हो जाता है।

हमने देखा कि निद्रा की चेतना मनुष्य की सबसे निम्न चेतना है। इस चेतना मे ंवह अपने मन की गतिशीलता को भी अनुभव नहीं करता। स्वप्न की चेतना इससे उच्च स्तर की चेतना है। क्योंकि इस चेतना में वह अपने में भ्रमण के कारण; उत्पन्न विचारों को स्वप्न के रूप में अनुभव करने की शक्ति को प्राप्त हो जाता है।

इससे उच्च स्तर की चेतना इन्द्रिय जगत की जागृति होती है। क्योंकि इस चेतना में मनुष्य अनन्त तक विकसित इन्द्रिय जगत के अनन्त पहलुओं में भ्रमण को महसूस करने की जागृति को प्राप्त हो जाता है। जिससे अनन्त पहलुओं की चेतनाओं में से कुछ पहलुओं की चेतना उभर सके और वह उन पहलुओं का ज्ञानी व्यक्ति बन सके। संसार में देखा भी यही जाता है। किसी ने इन्जीनियरिंग की चेतना उभार ली; तो किसी ने औषधि के क्षेत्र में अपनी चेतना उभार ली। खेल के जगत में अलग-अलग व्यक्तियों ने अलग-अलग खेलों की चेतना उभार ली।

> **यह सृष्टि दो भागों में बंटी है। इन्द्रिय जगत (स्थूल-क्षेत्र) और पराजगत (सूक्ष्म-क्षेत्र)। हमने यह भी देखा कि कर्म से चेतना, चेतना से ज्ञान। ज्ञानी या अज्ञानी हमारे 'मैं' को होना है। जो मात्र स्थूल-क्षेत्र के विषयों के ज्ञानी होते हैं, बहुधा सुखी जीवन का ज्ञान उनके पास नहीं होता। हर जीवन दो भागों में बंटा होता है। और जीवन का ज्ञान मात्र सूक्ष्म भाग के ज्ञान में होता है।**

यदि हम अपना ध्यान वनस्पति जगत के जीवन की ओर ले जाएं तो हम देखते हैं कि पेड़ों का जीवन दो भागों में बंटा होता है। एक पृथ्वी के ऊपर, दूसरा पृथ्वी के नीचे। पृथ्वी के ऊपर के भाग का जीवन कैसा होगा? यह केवल पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति का ज्ञान और पेड़ों के बीज के ज्ञान पर निर्भर करेगा।

इस प्रकार मनुष्य के सुखी जीवन का ज्ञान मात्र पराजगत के ज्ञानियों को होता है। इन्द्रिय जगत के विषयों के ज्ञानियों के पास नहीं होता। सुखी जीवन

का ज्ञान परा चेतना में होगा; और परा चेतना मन को, पराक्षेत्र में मन के विचरण द्वारा प्राप्त होगा। पराक्षेत्र की चेतना इन्द्रिय जगत की चेतना से उच्च स्तर की चेतना होती है। इसलिए परा-चेतना की प्राप्ति इन्द्रिय जगत की जागृति में परा-क्षेत्र में प्रवेश करने की विधि का लम्बा अभ्यास करना पड़ेगा। तभी पराजगत की पहली सिद्धि प्राप्त होगी।

उच्च स्तर की चेतना निम्न स्तर की चेतनाओं को भी ऊपर उठाती हैं। यदि पराजगत की पहली या दूसरी सीढ़ी को प्राप्त हो जाएं; तो इन्द्रिय जागृति के कर्म भी उसे दु:ख देने की बजाय मात्र सुख देंगे। तुलनात्मक दृष्टि से स्वप्न की चेतना कुछ अधिक सुखदायी होने लगेगी। निद्रा भी अधिक गहरी होने लगेगी; और जितनी गहरी निद्रा के बाद मनुष्य जागृत अवस्था को प्राप्त होगा। जागृत अवस्था भी उतनी ही ज्यादा मन को संतुष्टि देने वाली होगी।

जब आवे संतोष धन।
सब धन धूलि समान॥

परा-क्षेत्र की पहली सिद्धि को प्राप्त हो जाने से जागृत अवस्था के 'मैं' को उच्च चेतना प्राप्त होने का लाभ भी मिलेगा और निम्न स्तर की चेतना निद्रा भी जीवन को अधिक सुखी बनाने में सफल होगी।

> **परा-क्षेत्र (Transcendental Field) ब्रह्म की शक्ति का समुद्र है। इसलिए आन्तरिक क्षेत्र में विचरण को शास्त्रों ने ब्रह्मचर्य कहा है। ब्रह्मचर्य के अभ्यास (Meditation) के माध्यम से मन का योग ब्रह्म की शक्ति से होता है।**

इस अभ्यास के अन्तराल में मन अपने में ब्रह्म की शक्ति को पिरोकर इन्द्रिय जगत में विचरण करता है। धीरे-धीरे उसके अनुभवों में बदलाव आता है; और आन्तरिक क्षेत्र में जागृति उत्पन्न हो जाती है। साधक क्षणों में इन्द्रिय जगत को छोड़कर, आन्तरिक क्षेत्र में विचरण करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। आन्तरिक क्षेत्र का यह विचरण ही योग है। मन की इस अवस्था को योगस्थ कहा गया है और श्रीकृष्ण ने गीता (2.48) में कहा है

'योगस्थ: कुरु कर्माणि'

योगस्थ की अवस्था को प्राप्त हो जातना, परा-क्षेत्र में विचरण करने की पहली

सिद्धि है। और इस सिद्धि द्वारा मनुष्य चतुर्थ चेतना को प्राप्त हो जाता है। इन्द्रिय जगत की जागृति को चतुर्थ अवस्था की चेतना का भी लाभ मिलेगा। और चतुर्थ अवस्था की प्राप्ति के कारण निद्रा अवस्था को जो लाभ मिलेगा, उसका लाभ भी जागृत चेतना को ही मिलेगा।

मनुष्य की जागृत चेतना के समय का जीवन, ही मनुष्य का मुख्य जीवन है। और चेतना ही मन की शक्ति है। ज्यों-ज्यों मन की शक्ति बढ़ती है, इन्द्रियां जगत का जीवन अधिक सुखदायी होता जाता है।

आन्तरिक जगत में विचरण करने में सिद्ध होकर मन कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म करें। श्रीकृष्ण का यह सुझाव समाज में आया। एक समय था जब समाज के सभी घरों के बच्चे आठ वर्ष की आयु में अपने-अपने गुरुओं के साथ आन्तरिक जगत में विचरण की सिद्धि प्राप्त करने हेतु मां-बाप का घर छोड़ कर चले जाते थे।

जैसा समाज वैसी शिक्षा

जीवन का यह सत्य वर्तमान युग के अधिक आयु वाले व्यक्तियों के भी अनुभव में है। यह स्पष्ट है कि जब मनुष्य की चेतना आध्यात्मिक शक्ति से प्रभावित थी; उस समय समाज अपने बच्चों को आध्यात्मिक शिक्षा के माध्यम से उनकी आन्तरिक चेतना का विकास कराने वाली शिखा का प्रचलन किया। धीरे-धीरे युग का पतन हुआ। समाज की सामुहिक चेतना बदली। इन्द्रिय जगत की मायावी-चेतना समाज में बढ़ती चली गई। और स्थूल चेतना से सम्बन्धित शिक्षाओं का विकास होने लगा। आन्तरिक चेतना की शिक्षा लुप्त होने लगी।

जिस समय आन्तरिक शिक्षा लुप्त नहीं हुई थी, उस समय विद्यार्थी अपने गुरुओं के पास रहकर, आन्तरिक क्षेत्र में विचरण करने में सिद्ध होकर अपने मां-बाप के घर वापिस आते थे। और गृहस्थ जीवन आरम्भ होता था। गृहस्थ शब्द अनेक क्रियाओं का प्रतीक है। ऐसे गृहस्थ जीवन में आंतरिक जगत में विचरण का अभ्यास बढ़ाते हुए, कर्मेन्द्रियों द्वारा इन्द्रिय जगत के सुख के भोग की प्रथा बनी।

यह मनुष्य जीवन ही आध्यात्मिक शिक्षा का जीवन है। अर्थात्

आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होने का मार्ग है। आत्मज्ञान और आत्मधन, हमेशा साथ ही रहते हैं। कभी एक दूसरे से अलग नहीं होते; और जीवन से भी अलग नहीं होते।

जीवात्मा शरीर धारण करती है; और छोड़ती है। परन्तु जब तक जीवात्मा, आत्मा नहीं बनती; जीवन जीवात्मा के साथ रहता है। शरीर रहे या न रहे। अथवा जीवात्मा दूसरा शरीर धारण करे। यही कारण है कि शास्त्र बताते हैं कि

आत्मधन जो जीवन को अग्रसर करने के लिए होता है, हमेशा जीवन के साथ रहता है। अर्थात् शरीर छूटने के पश्चात् भी आत्मधन जीवात्मा के साथ हो लेता है।

परन्तु इन्द्रिय जगत का धन इन्द्रिय जगत में जीवन व्यतीत करने के लिए होता है; और कर्मेन्द्रियों के जगत में ही रह जाता है। अतः शरीर छूटने के साथ ही वह जीवात्मा का साथ छोड़ देता है। ❑

सम्पूर्ण ज्ञान का स्त्रोत हम सबमें है

-स्वामी विवेकानन्द

आत्मा सभी व्यक्तियों की एक है; और अपरिवर्तनीय है

'आत्मा एक और अद्वितीय है।'

वह जीवन नहीं है, अपितु वह जीवन में रूपांतरित कर ली जाती है। वह जीवन और मृत्यु, तथा शुभ और अशुभ से परे है। वह निरपेक्ष एकता है। नरक के बीच भी सत्य को खोजने का साहस करो। नाम और रूप की, सापेक्ष की मुक्ति कभी यथार्थ नहीं हो सकती। कोई रूप नहीं कह सकता; मैं रूप की स्थिति में मुक्त हूं।

जब तक रूप का संपूर्ण भाव नष्ट नहीं होता; मुक्ति नहीं आती।

यदि हमारी मुक्ति दूसरों पर आघात करती है, तो हम मुक्त नहीं हैं। हमें दूसरों को आघात नहीं पहुंचाना चाहिए। वास्तविक अनुभव केवल एक होता है; किन्तु सापेक्ष अनुभव अवश्य ही अनेक होते हैं।

समस्त ज्ञान का स्रोत हममें से प्रत्येक में है - चींटी में तथा सर्वोच्च

देवदूत में।

वास्तविक धर्म एक है। सारा झगड़ा रूपों का, प्रतीकों का और दृष्टान्तों का है। सतयुग खोज लेने वालों के लिए, सतयुग पहले से ही विद्यमान है। सत्य यह है कि हमने अपने को खो दिया है। और संसार को खोया हुआ समझते हैं।

'मूर्ख! क्या तू नहीं सुनता? तेरे अपने ही हृदय में रात-दिन वह शाश्वत संगीत हो रहा है : सच्चिदानन्द सोडहम्, सोडहम्!'

मनोकामना का वर्जित करके विचार करना; असम्भव को सम्भव बनाना है। हर विचार के दो भाग होते हैं; विचारणा और शब्द। और हमें दोनों की आवश्यकता है। जगत् की व्याख्यान; न तो आदर्शवादी कर पाते हैं और न भौतिकवादी। इसके लिए हमें विचार और अभिव्यक्ति दोनों को लेना होगा।

ज्ञान का अस्तित्व शाश्वत है।

जो व्यक्ति किसी आध्यात्मिक सत्य को खोज लेता है; उसे हम 'ईश्वर प्रेरित' कहते हैं और जो कुछ वह संसार में लाता है, वह दिव्य ज्ञान या श्रुति है। किन्तु श्रुति भी शाश्वत है; और उसका अन्तिम रूप निर्धारित करके; उसका अंधानुसरण नहीं किया जा सकता। दिव्य ज्ञान की उपलब्धि ऐसे हर व्यक्ति को हो सकती है, जिसने अपने को उसे पाने के योग्य बना लिया हो। पूर्ण पवित्रता सबसे आवश्यक बात है, क्योंकि पवित्र हृदय वाला ही ईश्वर के दर्शन पा सकेगा। ❑

विद्यार्थियों को प्रतिभावान कैसे बनाएं?

प्रश्नकर्ता : श्री राज कुमार जैन, कुल्लू (094180-35624)

शरीर एवं बुद्धि के लिए तो बाहर के प्रकाश की आवश्यकता है, परन्तु मन को जीवन सुचारू यप से चलाने के लिए अन्दर (जीवात्मा) का प्रकाश चाहिए।

अन्दर का प्रकाश कहां है?

हम दिन भर काम कर के थक जाते हैं और आराम करने के लिए विवश हो जाते हैं। सोते समय मन का बाहर के जगत में भ्रमण छूट जाता है और अन्दर की दुनिया से स्वयं नाता जुड़ जाता है।

होता यह है कि मन का सम्पर्क सीधे जीवात्मा से जुड़ जाता है। उसे बाहर का और कोई कार्य शेष नहीं बचता इसलिए वह सीधे अन्दर गोता लगाता है। समर्पण भाव के कारण मन, जीवात्मा से जितनी ऊर्जा सम्भव होती है, अपने में पिरो लेता है। इन्द्रिय जगत में वापस आने पर उस ऊर्जा को बाहर के कार्यों में प्रयोग करता है।

यही कारण है कि हम जागने के उपरान्त अपने में दोबारा चुस्ती फूर्ती अनुभव करते हैं; और फिर से कार्य आरम्भ कर लेते हैं।

जीवात्मा परमात्मा का अंश है। परमात्मा के सभी गुण (अखण्ड शक्ति, अखण्ड आनन्द, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड प्रेम तथा अखण्ड स्वास्थ्य) पर उसका पूरा हक है।

जीवात्मा अविनाशी जीव है; जिसके लिए रामचरित मानस में संत तुलसी दास ने कहा है –

ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

उपरोक्त चौपाई बताती है कि: 'स्वयं' का स्वरूप चेतना (Consciousness) है। जब 'मैं' खो जाता है, उस समय भी 'मैं' होश में था। इसका अर्थ तो यही निकला कि उस समय जो था, वह मात्र होश था। जब 'मैं' वापस आया, या यह कहें कि हम अपने आपको याद आ गए; तब मुझे पता चला कि मैं होश में था, सोई हुई अवस्था में नहीं था, जबकि 'मैं' (अहं) था ही नहीं।

यदि विषय आन्तरिक जगत का है, तो हम देख चुके हैं कि आन्तरिक जगत को जानने के लिए, मन न तो इन्द्रियों की मदद लेता है और न ही बुद्धि की। दूसरे शब्दों में प्रयास के साथ आन्तरिक जगत में मन का विचरण असम्भव है। इसलिए प्रयासहीन होकर ध्यान पर बैठना सिखाया गया। किसी भी शब्द, मन्त्र या रूप द्वारा एकाग्रता नहीं सिखाई गई। जब तक प्रयास रहेगा, तब तक बन्धन है; और बन्धन (Slavery) में आन्तरिक जगत का विरण असम्भव है।

जब मन आन्तरिक जगत में विचरण करता था, तब वहां बुद्धि नहीं थी। जब तक मन और बुद्धि साथ नहीं मिले, 'मैं' का कोई अस्तित्व ही नहीं है। इसी को 'मैं'

का खोना कहते हैं। पूर्ण चेतना बहुत उच्च कोटि का होश (Higher Consciousness) है।

भीतर के संसार से, परिचय कर नादान।
बाहर के संसार का भी हो जाएगा ज्ञान॥

जीवन साधने की चेतनाएं व कक्षाएं

परमात्मा और परमात्मा के अंश में अन्तर केवल उनकी अलग-अलग जागृति के कारण है। शास्त्र में सम्पूर्ण जागृति को सात भागों में बांट दिया। आत्मज्ञान का लक्ष्य होता है - पूर्ण जागृति की प्राप्ति। जागृति में अनुभव करने की शक्ति है : अनुभव को ही ज्ञान कहते हैं। दूसरे शब्दों में जागृति में ही ज्ञान है।

(क) **निद्रा (Sleeping) :** निद्रा सबसे छोटी जागृति है। क्योंकि निद्रा टूटने के बाद हमें निद्रा का ज्ञान हो जाता है, कि हमें कैसी निद्रा आई। यदि यह ज्ञान होना असंभव होता, तो निद्रा जागृति नहीं होती।

(ख) **स्वप्न (Dreams) :** दूसरी जागृति स्वप्न है। जो हमें अनुभव कराती है, कि स्वप्न के समय मन हमारे आन्तरिक क्षेत्र के किन अंकित भावों में भ्रमण कर रहा था।

(ग) **दिन-चर्या (Daily Routine) :** तीसरी जागृति हमें इन्द्रिय और बुद्धिजगत में भ्रमणों का ज्ञान कराती है।

(घ) **भावातीत जागृति (Transcendatal Consciousness) :** चौथी जागृति हमें, इन्द्रिय और बुद्धिजगत को छोड़कर, मन आन्तरिक क्षेत्र के किन भागों में भ्रमण करता है : इसका ज्ञान कराती है।

(ङ) **ब्रह्मी जागृति (Cosmic Consciousness) :** आन्तरिक क्षेत्र में भ्रमण करके मन योगशक्ति लेकर बाहर आये और इन्द्रियजगत में कर्म करे। इससे योग की शक्ति इन्द्रियों में और इन्द्रियजगत के क्षेत्र में पिरोएगी। इससे एक नई अनुभूति प्राप्त होती है कि हमारी इच्छाओं की पूर्ति थकावट से भर देने वाली, मेहनत से भरे कर्मों द्वारा नहीं होती। बल्कि योगशक्ति इन्द्रियजगत में पिरोने से होगी। यहां एक नई अनुभूति

उत्पन्न होती है और यह पांचवें स्तर की अनुभूति है।

(च) **ईश्वरीय (God) जागृति :** छठी अनुभूति की प्राप्ति तक मनुष्य अपनी हर इच्छा की पूर्ति कर सकता है, परन्तु केवल समय आने पर।

(छ) **अद्वैत (Unity) जागृति :** यदि वह साधना में आगे बढ़ता ही जायेगा, तो सातवीं अनुभूति यह होगी, कि अब वह अपनी इच्छाओं की तत्काल पूर्ति करने योग्य हो गया है, अर्थात् समय पर भी विजय प्राप्त कर ली है। ऐसा मनुष्य अपने को ब्रह्मस्वरूप अथवा परमात्मास्वरूप मानने के लिए बाध्य हो जाता है।

ऊपर बताये हुए अनुभव तब प्राप्त होते हैं, जब अनुभवशक्ति बढ़ती ही चली जाती है। अनुभवशक्ति को शास्त्रों में चेतना कहा है। इस प्रकार से पूर्णचेतना को सात चेतनाओं में बांट दिया गया है।

राम भगति मनि उर बस जाके।
दुःख लवलेस न सपनेहुं ताके॥

चेतना-योग के लाभ

श्री महेन्द्र सिंह जांगडा (094676-07109)

मन का विकास : मन में शान्ति, खुशी आएगी। दूसरों के प्रति विरोध कम होगा, डर खत्म होगा। नकारत्मक विचार खत्म होंगे और सकारात्मक बनेंगे। हीन भावना खत्म होगी, उतावलापन खत्म होगा। मन शक्तिशाली बन जाएगा, गुस्सा कम होगा।

बुद्धि का विकास : बुद्धि तेज हो जाएगी। पढ़ने की योग्यता बढ़ जाएगी। पाठ जल्दी याद होगा। आचरण अच्छा हो जाएगा। चरित्र भी अच्छा हो जाएगा। व्यर्थ की बातें नहीं होंगी। सहज रहोगे। रोजगार में वृद्धि होती है। भगवान में विश्वान होगा।

शरीर का विकास : शरीर को ऊर्जा शक्ति मिलती है। थकावट बहुत जल्दी खत्म होती है। शरीर हल्का -फुल्का हो जाता है। बीमारी खत्म हो जाती है। काम अधिक करने की शक्ति आती है। तनाव तथा बी.पी. ठीक हो जाता है। नींद ठीक आती है। भगवान की शक्ति के द्वारा मन के प्रतिकूल विचार नष्ट हो जाते हैं और

अनुकूल विचारों को भगवान की शक्ति मिलती है। सर्वश्रेष्ठ साधन है। होनी की शक्ति बढ़ जाती है। मन में दान, पुण्य, सेवा, क्षमा आ जाते हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक खत्म हो जाते हैं।

व्यक्ति जन्म से महान नहीं होता, कर्म से महान होता है। ❑

शिवरात्री : वास्तविक अभिप्राय

– श्रीमती अनु जैन (भिवानी)

शिव का अर्थ है : कल्याणकारी, मंगलकारी अथवा शुभकारी। विद्वानों का कहना है कि **शि** का अर्थ : पापनाशक और **व** का अर्थ : मुक्तिदाता है। **शिव का नाम : पशुपति इसलिए है :** क्योंकि आत्मा को कर्मरूपी खूंटों में बंधे होने के कारण, पशु कहा जाता है।

इस प्रकार शिव आत्माओं को उन बंधनों से छुड़ाने वाले त्रिताप हरि (तीनों पापों को हरने वाले) हैं। शिव को विश्व का माता-पिता और सृष्टि का कालातीत व आदिगुरु माना गया है।

शिवलिंग : शिव ही की प्रतिमा

परमात्मा शिव तो पिता भी है और माता भी। फिर भी ये शरीरधारी नहीं हैं, बल्कि ज्योतिबिन्दु हैं; अथवा मंडलाकार ज्योति हैं। इसलिए उन्हें ज्योतिलिंग भी कहा जाता है; और उनका स्मरण शिवलिंग के विशेष नाम से किया जाता है।

इसके अतिरिक्त लिंग शब्द लक्षण या संकेतक के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। एक दर्शन में कहा गया है कि इच्छा, द्वेष, सुख-दुख और ज्ञान – ये सभी आत्मा के लिंग हैं। यहां भी लिंग शब्द का अर्थ लक्षण है। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि पीछे, पहले, एक साथ, देर से और झटपट आदि शब्द – ये सभी काल के लिंग है। इसी प्रकार न्याय दर्शन में दिशा के लिंग बनाए गए हैं। निश्चय ही इन ग्रन्थों में लिंग शब्द का अर्थ लक्षण ही है।

शिवरात्रि और महारात्रि

यह स्पष्ट है कि रात्रि और महारात्रि शब्द अज्ञानता और अपराध के सूचक हैं। सामान्य अर्थ में रात्रि शब्द पाप और तमोगुण का सूचक है। शिवरात्रि यानि कृष्ण

पक्ष की चौदरहवीं रात्रि को तो घोर अंधकार होता है। यानी कह सकते हैं : कि कृष्ण पक्ष की यह रात घोर अज्ञानता, पापाचार और दुराचार का प्रतीक है। और फिर, देशीय गणना के अनुसार फाल्गुण मास वर्ष का बारहवां यानी अन्तिम मास है। अत: यह महीना तो घोर अज्ञानता और अपवित्रता का द्योतक ठहरता है। ऐसे में शिव पूजन और ध्यान, तप आदि की जरूरत तो और भी बढ़ जाती है।

शिवलिंग पर तीन रेखाएं : क्यों अंकित?

शिवलिंग पर चढ़ाए जाने वाले बेलपत्र में भी तीन ही पत्तियां होती हैं। असल में, तीन रेखाओं का अंकन और बेलपत्र का अर्पण इस बात का प्रतीक है कि शिव त्रिमूर्ति : अर्थात् ब्रह्मा-विष्णु-शंकर के रचयिता है। ब्रह्मा के रूप में शिव सतयुग रूपी सृष्टि की स्थापना करते हैं। शंकर के रूप में शिव कलियुगी आसुरी सृष्टि का विनाश करते हैं तथा विष्णु के रूप में शिव सतयुगी सृष्टि का पालन-संचालन कराते हैं। इसलिए शिव के रूप में तीन देवता है और तीनों देवताओं के रचयिता परमात्मा स्वयं त्रिमूर्ति शिव हैं।

यह भी एक बड़ा विस्मय है कि जब भक्तगण अन्य देवी-देवताओं पर सुगंधित पुष्प चढ़ाते हैं, तो भगवान शिव पर आक और धतूरा चढ़ाते हैं। यह किस बात का प्रतीक है?

असल में, कल्पान्त में जब परमात्मा अवतरित होते हैं; उस समय सभी आत्माएं विकारों के वशीभूत होकर तमोप्रधान हो जाती हैं। उन्हें फिर से पवित्र करने के लिए पतित पावन भोले-भंडारी आदेश देते हैं : कि मुझ पर काम-क्रोध आदि पंच विकारों की बलि चढ़ा दो। इसी कृत्य के रूप में भगवान शिव पर आक और धतूरा चढ़ाया जाता है।

शिवरात्रि के पर्व पर हमें सदा यह याद रखना चाहिए कि ज्ञान के द्वारा आत्मा की जागृति ही मनुष्य का वास्तविक जागरण है। काम, क्रोध, आदि विकारों का त्याग ही शिव पर चढ़ाई गई वास्तविक बलि है। ईश्वरीय मस्ती (Meditation) अथवा नारायण का नशा ही वास्तविक नशा है। इन विधियों से शिवरात्रि मनाना ही इस त्यौहार को वास्तविक रीति से मनाना है। ❑

अन्तःकरण की शुद्धि

– डा० बलदेवराज नाशा

आंख मींचकर बैठना और मन को स्वतन्त्र छोड़ देना, जिससे मन में समाये हुए संस्कार विचारों के माध्यम से बिना किसी बाधा के निकल सकें। यह ही मन और अन्तःकरण की शुद्धि की प्रक्रिया है। इससे मन अपने अन्दर स्थित प्रभु की शक्ति के नजदीक हो जाता है। इसी को प्रभु से मिलन कहते हैं। इसी विधि को 'ध्यान' अथवा 'ध्यान-योग' कहते हैं।

ध्यान करने के लिए आस्तिक होना जरूरी नहीं है। ईश्वर के होने या न होने के विषय में शक (सन्देह) हो सकता है। परन्तु आप हैं; इस पर आप सन्देह नहीं कर सकते। क्योंकि आप हैं (You are being)।

ध्यान एक प्रयोगात्मक रास्ता है।

ध्यान द्वारा आपको हर चीज का ज्ञान मिलता है। ध्यान से मनुष्य भूत और भविष्य को भूलकर, वर्तमान में जीता है। जितना समय वह ध्यान में है; जन्म से पहले और मृत्यु के बाद की बातों से, वह स्वतन्त्र (बन्धन मुक्त) है। वह अपने शरीर को भी भूल जाता है।

आन्तरिक ज्ञान के प्रकाश में वह अपने को अनन्त का अंश महसूस करने लगता है। अपने नित्य के जीवन में हम बाहर व्यस्त रहते हैं, परन्तु अपने को नहीं जानते।

ध्यान हमें हमारे बारे में बताता है। वह हमें शान्ति की चरम सीमा तक पहुंचाता है। ध्यान द्वारा हम अपने अन्दर की यात्रा (भ्रमण) करते हैं। शरीर केवल बाहरी खोल है।

हम अधिकतर अपनी भूतकाल की यादों में खो जाते हैं या भविष्य की कल्पनाओं में। ध्यान द्वारा हम वर्तमान का मजा लेते हैं।

हम अपने मन की सीमाओं से बंध जाते हैं। ध्यान इन सीमाओं को तोड़ने में मदद करता है। ध्यान हमें शान्ति और आनन्द में रहना सीखाता है।

ईश्वर निराकार है

उसकी तो अपने अन्दर ध्यान के समय, केवल अनुभूति है। यह अनुभूति अपनी

ऊंची या नीची अवस्था के अनुसार होती है। बहुत ऊंची अवस्था वाले को उठते, बैठते, सोते, चलते-फिरते, काम करते, आनन्द का अनुभव बना ही रहता है। काम में उलझकर (अपने आप को) बिल्कुल भूल जाता है। ध्यान के समय आनन्द उभर आता है। मन अन्दर खिंच जाता है। साधक आरम्भ में केवल थोड़ी-थोड़ी देर बैठने का अभ्यास ही करें। धीरे-धीरे ईश्वर दर्शन अर्थात् आनन्द पाने की ओर बढ़ जाते हैं। कभी-कभी पिछले जन्मों की साधना के बल पर भी नया साधक एक दम आनन्द में डूबने लगता है।

प्रश्न - मैं तो ध्यान के लिए बैठता हूं और चाहता हूं कि घर के सब सदस्य बैठें। बहुत प्रयास करने पर भी कोई तैयार नहीं होता। ध्यान के लिए बैठने को समय की बर्बादी कहकर अड़चन डालते हैं।

उत्तर - कभी किसी को जबरदस्ती बैठने को मजबूर न करें। ध्यान की पुस्तकों के सैट में से कोई पुस्तक रसोई में, तो कोई पुस्तक बिस्तर पर, कोई कमरे में, तो कोई वारांडे में रख दें। घर में सब पढ़े-लिखें होने के कारण थोड़ा बहुत अवश्य पढ़ते हैं। इस प्रकार घर का वातावरण स्वयं ध्यानमय हो जायेगा। ध्यान के लिए बैठा देख छोटे बच्चे भी नकल से अनजाने में आंखें बन्द कर बैठ जाते हैं। बच्चे मुझसे कहीं बड़ी अनुभूतियां सुना देते हैं। मैंने बेटे से कहा कि मैं ध्यान साधना द्वारा सुखी हूं। बेटे ने कहा कि मुझे तो ध्यान साधना द्वारा ऐसा लगता है कि संसार का सबसे सुखी व्यक्ति मैं हूं।

मैंने कहा कि ध्यान के समय मुझे कभी कभी आनन्द आता है। मेरी बेटी बोली, 'पिता जी यह आप क्या कह रहे हैं? मैं तो प्रतिदिन ध्यान के समय आनन्द में इतनी मस्त हो जाती हूं कि उठने का मन ही नहीं करता।

प्रश्न : ध्यान द्वारा ईश्वरयी शक्ति मिल जाने से ही सब कुछ मिल जाता है। तो क्या प्राणायाम, व्यायाम, दुकान का काम, बच्चों को पढ़ाना-लिखाना आदि कामों की कोई जरूरत नहीं?

उत्तर : 'एकहि साधे सब सधे, सब साधे सब जाए। ध्यान द्वारा हमारे सब काम ईश्वर कृपा से हो जाएंगे। ध्यान साधना से जितनी ईश्वरीय शक्ति बढ़ेगी; उतने ही काम और इच्छाएं पूरी होंगी। अच्छा तो यही है कि किसी काम को छोड़ना नहीं

होता। ईश्वर कृपा से जो काम पूरे हो जाते हैं, उन्हें करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। बरसात हो जाने से नहर अथवा ट्यूबवैल से खेत को सींचने की जरूरत नहीं रहती। ध्यान द्वारा अन्दर से जितना आनन्द प्रकट हो जाता है, उतना बाहर का काम करते हुए आनन्द प्रकट हो जाता है, उतना बाहर का काम करते हुए आनन्द बना रहा है। सब कामों में अधिक से अधिक सफलता मिलने लगती है। ❑

ध्यान और कर्म का उज्जवल पथ

– महर्षि श्री महेश योगी

प्रश्न – जो नियमित रूप से भावातीत ध्यान करते हैं। उनमें भावातीत होने की स्वाभाविक योग्यता विकसित होती है; और वे जीवन-पोषणकारी कार्य करते है। यदि ऐसा है, तो इसमें कौन सी प्रक्रिया निहित है?

उत्तर – जब हम क्रियाशील रहते हैं, तब भावातीत होने की आवश्यकता नहीं रहती। होता यह है कि जब हम ध्यान में सवेरे भावातीत हो जाते हैं, तब उसका प्रभाव क्रियाशीलता के साथ सारे दिन रहता है। भावातीत चेतना का नाम ही क्रियाशीलता की स्थिति है। अब हम चाहते हैं कि वह प्रभाव हर समय बना रहे, तो चाहे हम क्रियाशील रहें या निष्क्रिय, गहरी नींद में शान्त रहें या जागृत में क्रियाशील रहें; हमारी वह विशुद्ध चेतना खो नजी जानी चाहिए। वह स्थाई रूप से जीवन में स्थापित हो जाये। इसके लिए हम जागृत की चेतना और भावातीत चेतना को पारी-पारी से अनुभव करने का क्रम बनाते हैं। हमें भावातीत होने के लिए कुछ करना नहीं चाहिए। वह अच्छी बात नहीं होगी।

पहले बहुत से लोग कहते थे कि जब तुम काम करते हो, उस समय भी आत्म चेतना बनाये रखने का प्रयत्न करो। परन्तु यह गलत साधना है। जब आप काम करते हैं, तब क्रिया के क्षेत्र में हैं। क्रिया के क्षेत्र में रहने से आप को मानसिक रूप से पूरी तरह बहिर्मुखी होना चाहिए। जिस में सभी ज्ञानेन्द्रियां बाहरी क्रियाशीलता में व्यस्त रहें। ऐसी स्थिति में जब आप क्रियाशील हैं, साथ ही आत्म-चेतना बनाये रखने का प्रयत्न करेंगे, तो मन बंट जाएगा।

मन का कुछ भाग क्रियाशीलता में रहेगा और कुछ भाग आत्मा की

शान्ति का स्मरण करता रहेगा। यह आत्म-स्मरण जिसकी वकालत पहले कई गुरुओं ने की, हानिकारक है।

क्योंकि उसमें आधा मन बाहरी क्रिया में और आधा मन भीतर रहता है। मन के इस विभाजन में वह कमजोर होता जाता है। परिणाम होता है कि न तो हम पूरे क्रियाशील हर पाते हैं; और न स्मरण के आधार पर आन्तरिक चेतना ही बनाये रख सकते हैं।

हमें अपनी चेतना को विचारों के सूक्ष्म स्तर से आगे भावातीत क्षेत्र में ले जाना चाहिए। तभी भावातीत चेतना एक यथार्थ होगी।

जब हम ध्यान में सूक्ष्मतम विचारों से अतीत हो जाते हैं, तभी आत्म स्थिति प्राप्त होती है। क्रिया में रहते हुए आत्मा की अनन्तता, असीमता का ही मनन करते रहें तो वह केवल वृत्ति ही रहेगी। यह विकास के किसी भी पक्ष के लिए अत्यन्त हानिकारक है, क्योंकि यह मन को विभाजित और कमजोर कर देती है।

इसलिए नीति यह है कि जब हम अन्तश्चेतना में जायें, तो पूरी तरह भावातीत होकर वहां स्थित हो जायें। और जब बाहरी क्रियाशीलता में जायें तो पूरी तरह उसमें निमग्न हो जायें। यह जीवन को समग्र बनाने का सूत्र है। पूर्ण रूप से भीतर और पूर्ण रूप से बाहर। किसी पक्ष में अधूरापन उचित नहीं।

माता का केवल विचार करने से माता नहीं मिलती। उनका विचार तो अच्छा है, पर उतना अच्छा नहीं, जितना अच्छा उनका सामीप्य है। सत्य का विचार, सत्य की स्थिति नहीं है। हम जो चाहते हैं, वह सत्य की स्थिति है। एक ही विचार, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो; स्थायी नहीं रहता। व्यवहार क्षेत्र में बहुत सी बातें होती हैं। और यदि मन एक ही विचार रखना चाहे, वह अनन्तता का हो या आत्मा का, या और कुछ का; तो उसका स्थान दूसरा विचार आकर ले लेता है। इस प्रकार हमारा जीवन अनन्त विचारों में से चलता है। हमारा जीवन स्वयमेव सुशुप्ति अवस्था में, विचारशून्यता की स्थिति में भी रहता है। वह कई घंटे विचारों में रहता है, इसलिए उसे एक ही विचार पर स्थिर रखना, और उस विचार को स्थायी बनाना सम्भव नहीं है।

सम्भव यह है कि आत्मा की स्थिति बिना आत्मा का मनन किये; स्थायी बनायी

जा सकती है। वह न तो विचार ही है और न ही मनन ही; वह जीवन की एक स्थिति है। यह बहुत महत्वपूर्ण है। हम उस स्थिति का जीवन चाहते हैं। आत्मा का विचार, विचारमन्त्र है। वह आत्म-स्थिति नहीं है। इसलिए हम अधिक व्यावहारिक और यथार्थवादी होना चाहते हैं; और अपने विचार सत्य में रूपान्तरित करना चाहते हैं।

मार्ग - भावातीत चेतना है; और लक्ष्य है, उस असीमता और यथार्थता को प्राप्त करना।

तुरीय चेतना की यथार्थता है :- जो हमारे क्रियाशील रहते समय विलुप्त हो जाये। वह हमारे साथ जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति; तीनों चेतनाओं में विद्यमान रहती है। सभी समय की यथार्थता का अर्थ है कि क्रियात्मक यथार्थता के जीवन के साथ-साथ सुषुप्ति की शान्ति, जागृति की क्रियाशीलता और स्वप्न की भ्रामकता का अनुभव आत्म-चेतना के प्रकाश में हो। उस समय आत्मा जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति के अनुभवों का प्रत्यक्ष द्रष्टा होता है। हम व्यावहारिक और प्रत्यक्षवादी होना चाहते हैं। हम एक भ्रम में रह कर विचार के क्षेत्र में कुछ समय के लिए वृत्ति बनाने के प्रयत्न में ही सन्तुष्ट नहीं रहना चाहते। वह बहुत सतही प्रयास है, जिससे हमें किसी भी स्तर पर सन्तोष नहीं हो सकता। अनुभव और ज्ञान दोनों होना चाहिए। ❑

मन की चार अवस्थाओं का विकास

प्रस्तुति : श्री गंगाधर बन्सल (094160-41346)

ज्यों-ज्यों चेतना का चेत स्तर विचार-उद्गम स्थान (Source of Thought) से दूर होता है, त्यों-त्यों विचार-उद्गम स्थान की शक्ति का प्रभाव चेतना के चेत स्तर पर कम पड़ता है। विचार-उद्गम स्थान पर अन्दर के क्षेत्र की शक्ति, भावातीत क्षेत्र की शक्ति (अर्थात् ईश्वरीय शक्ति), बाहर की दुनिया में प्रयोग होने की अवस्था में सबसे ज्यादा रहती है; और यह शक्ति एक प्रकाश के रूप में रहती है। जैसे यदि एक बल्ब जल रहा है, तो ज्यों-ज्यों हम उस बल्ब से दूर होते जाएंगे उसका प्रकाश कम मिलेगा; और ज्यों-ज्यों नजदीक होते जाएंगे प्रकाश ज्यादा मिलेगा। इसी प्रकार

ज्यों-ज्यों चेतना का चेत-स्तर उद्गम स्थान के समीप रह कर, बाहर की दुनिया में क्रिया करता है; त्यों-त्यों अन्दर की अधिक शक्ति प्रयोग करने की अवस्था में होने लगती है। धीरे-धीरे ऐसी अवस्था का बढ़ना ही, मन का विकास है; और इसी विकास के लिए हम नित्य ध्यान का अभ्यास करते हैं।

अब हम देखेंगे कि इस अभ्यास से मन में कैसे वे चार शक्तियां बढ़ती हैं जिनके सहारे मन चार अवस्थाओं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में आगे बढ़ता है।

जब हम ध्यान करते हैं, तो मन अपने स्वभाव से (हमारे किसी प्रयास से नहीं), बार-बार अन्दर के क्षेत्र में जाता है। वहां संस्कारों की पर्तों को चीरता हुआ, ईश्वरीय तत्व को लेता है; और समायी हुई प्रतिक्रियाओं (संस्कार) को भावों के क्षेत्र में निकाल देता है। ऐसा बार-बार होने से अन्दर के संस्कार कम होते चले जाते हैं। अन्दर की दुनिया में जो ईश्वरीय क्षेत्र है, यह हमेशा संस्कारों से ढका रहता है। इसका कारण यह है कि ईश्वरीय क्षेत्र संस्कार से ज्यादा सूक्ष्म है। यह ढका रहना ऐसे ही है जैसे सूर्य बादलों से ढक जाता है। ज्यों-ज्यों बादल रूपी संस्कार कम होते जाते हैं, त्यों-त्यों मन को अन्दर की शक्ति ज्यादा मिलने लगती है। जब हम एक नदी में नहाते हैं और डुबकी लगाते हैं, तो अन्दर का उछाल हमेशा हमें बाहर की ओर फैंकने में लगा रहता है। पानी का घनत्व इस उछाल में अपना योगदान देता है। ठीक इसी तरह

जब मन अन्दर के क्षेत्र में पहुंचता है, तो यदि संस्कार ज्यादा घने होंगे तो संस्कारों की वह शक्ति जो मन को अन्दर रहने नहीं देती, वह ज्यादा होगी और मन को बाहर की दुनिया में जल्दी भेज देगी।

मन केवल थोड़ी देर के लिए ईश्वर के क्षेत्र में रह पाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि ध्यान जल्दी टूट जाएगा। पर ज्यों-ज्यों संस्कार हल्के होते जाएंगे, मन को ऊपर वापस भेजने वाली शक्ति कम होती जाएगी। मन अधिक समय के लिए ईश्वरीय क्षेत्र में विचरण करने योग्य होने लगेगा। ध्यान के नित्य अभ्यास से ईश्वरीय क्षेत्र में विचरण करने में मन निपुण और सक्षम होता जाएगा। ईश्वरीय तत्व के कोष को ही ब्रह्म कहते हैं। इसलिए हम कहेंगे कि

> **ध्यान के अभ्यास से ब्रह्म के क्षेत्र में विचरण करने की मन की शक्ति बढ़ती है। यही ब्रह्मचर्य की अवस्था में आगे बढ़ना है।**

जब मन बार-बार ईश्वरीय क्षेत्र में कुछ देर तक विचरण करने योग्य हो जाता है, तो मन धीरे-धीरे ईश्वरीय तत्व को अपने में पिरोता है। जब ध्यान टूटता है या जब मनुष्य ध्यान पूरा करके उठता है; और अपनी क्रियाओं के क्षेत्र में जाता है तो वह अपने दैनिक जीवन की क्रियाओं में व्यस्त होता है। क्रियाओं के समय कुछ ईश्वरीय तत्व वायुमण्डल में उड़ जाता है; और कुछ मन में पिरो जाता है। यह बिलकुल ऐसे ही होता जैसे हम कपड़ा रंगते हैं; और अगर हम चाहते हैं कि रंग कुछ गाढ़ा हो तो हम कपड़े को रंग की बाल्टी में कुछ देर के लिए छोड़ देते है। उसके बाद कपड़े को सूखने के लिए फैला देते हैं। सूखने में कुछ रंग हमेशा ही वायुमण्डल में उड़ जाता है। यदि हम चाहते हैं कि रंग कुछ और चढ़े, तो फिर रंग की बाल्टी में डालने के बाद सुखाते हैं। बिलकुल इसी तरह

> **नित्य ध्यान के अभ्यास से संस्कारों को हल्का करके मन को ब्रगह्म के क्षेत्र में कुछ अधिक समय के लिए विचरण करने योग्य बनाते हैं। जिससे कि मन ज्यादा से ज्यादा ईश्वरीय तत्व पिरो सके; और जब हम बाहर की क्रियाओं में आएं, उस समय मन में अधिक ईश्वरीय तत्व स्थायी रूप से बना रह सके। वायुमण्डल में भी धीरे-धीरे अधिक-से-अधिक सत का प्रभाव बढ़ सके।**

वायुमण्डल तीन तरह की शक्तियों से भरा है - शारीरिक शक्ति जो शरीर को क्रिया करने में मदद करती है, बुद्धि की शक्ति और मन की शक्ति (आत्मिक) जो कि क्रियाओं को दिशा देती है। जब क्रियाओं को ठीक दिशा मिलती है तो क्रियाओं में सफलता मिलती है; और सफलता मिलने से ही मन सुख का अनुभव करता है। आत्मिक शक्ति के अभाव में हम मजबूर हो जाते हैं कि केवल हमारी बुद्धि की शक्ति क्रियाओं को दिशा दे। जीवित तो सबको रहना है-जिसके पास केवल शारीरिक शक्ति है, वह उसी के आधार पर जीवन निर्वाह करेगा। जिसके पास दो शक्तियां हैं- शारीरिक और बौद्धिक वह इन दो शक्तियों के आधार पर जीवन का निर्वाह करेगा।

लेकिन पूर्ण रूप से समस्या-विहीन होने के लिए हमें तीनों तरह की शक्तियों

से पूर्ण होना पड़ेगा। जो मनुष्य जीवन में आत्मिक शक्ति, बढ़ा रहा है; वायुमण्डल में इस सत् के प्रभाव में वे सभी मनुष्य आ जाते हैं जो उस वायुमण्डल में रहते हैं। उनकी क्रियाएं भी इस सत् के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकती। इस तरह हम देखते हैं कि नित्य ध्यान का अभ्यास करने वालों के चारों ओर कुछ ऐसे लोगों का वातावरण सृजित हो जाता है, जिनकी क्रियाओं में सफलता ही सफलता रहती है। और ज्यों-ज्यों ब्रह्मचर्य की शक्ति बढ़ती है, सफलता बढ़ती जाती है।

एक गृहस्थ जीवन में माता, पिता, बच्चे, बहू, पोते सभी होते हैं। सभी का अपना अलग-अलग दैनिक जीवन होता है और वे भिन्न-भिन्न क्रियाओं में व्यस्त रहते हैं। इसीलिए प्राचीन समय में गृहस्थ शब्द को क्रियाओं का प्रतीक माना गया और

> **मन की उस अवस्था को, जिसमें मन क्रियाओं के क्षेत्र में सफलता ही सफलता देखे, गृहस्थ अवस्था कहा गया। क्रियाओं के क्षेत्र में सफलता की शक्ति बढ़ना ही गृहस्थ अवस्था में आगे बढ़ना है।**

जब हम क्रियाओं के क्षेत्र में आते हैं और सफलता पाते हैं, तो क्रिया करने में मन और लगता है। लेकिन जब इसके विपरीत असफल होते हैं, तो ऐसा कोई हो ही नहीं सकता, जिसका क्रिया में मन लगे। देखते हैं कि ज्यों-ज्यों हम ध्यान का अभ्यास बढ़ाते हैं (अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं), नित्य क्रियाओं की सफलता की ओर हम आगे बढ़ते चले जाते हैं और इसी के साथ-साथ, हम हर समय जब भी, जो भी करते हैं, अपने मन से करते हैं। बिना मन के कुछ नहीं करते।

> **मन के प्रतिकूल कोई क्रिया न करें। मन की इसी अवस्था को कर्म-मुक्ति कहते हैं और इसी अवस्था को वानप्रस्थ भी कहते हैं।**

वानप्रस्थ की अवस्था में मन बाहर क्रिया करते समय अन्दर के सुख में डूबा रहता है। अन्दर के सुख में डूबकर क्रिया करने से क्रियाओं के क्षेत्र में सफलता भी बढ़ती है; और मन बन्धनमुक्त भी रहता है। इस तरह हम देखते हैं कि अन्दर के क्षेत्र में विचरण की शक्ति, क्रियाओं के क्षेत्र में सफलता की शक्ति और बन्धनमुक्त होकर क्रिया करने की शक्ति निरन्तर ध्यान के अभ्यास से एक साथ बढ़ती है, एक के बाद एक नहीं।

जब भी हम कोई काम अपने मन से करते हैं, जब भी किसी काम में हमारा मन खूब लगने लगता है तो हम उस काम में डूबने लगते हैं। जो ब्रह्मचर्य का पालन करके, ब्रह्म क्षेत्र में अपने मन को अधिक से अधिक देर के लिए विचरण कराके; क्रियाओं के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है, उसका मन अन्दर की ईश्वरीय शक्ति से सम्पर्क की अनुभूति की अवस्था में, आनन्द में डूबी हुई अवस्था में ही क्रिया करता है। इसी को हम कहते हैं कि उसका क्रिया में मन लगा रहता है। यह जो ईश्वरीय तत्व है, इसका गुण कुछ ऐसा होता है कि ज्यों-ज्यों मन इस तत्व को पिरोता चला जाता है, त्यों-त्यों इस मन पर बाहर की क्रियाओं की प्रतिक्रियाएं ऐसी पड़ती हैं कि पड़ते ही मिट जाती है।

> **मन पर किसी भी बाहर की क्रिया की प्रतिक्रिया केवल इनती पड़े जितनी कि क्रिया को महसूस करने के लिए आवश्यक है, लेकिन ठहरे नहीं। मन की ऐसी अवस्था को ही संन्यास की अवस्था कहते हैं और हर संन्यासी का मन ऐसा ही होता है।**

संन्यास की इस अवस्था में चूंकि मन पर गहरी प्रतिक्रियाएं नहीं पड़ती, इसलिए वे संस्कार बन ही नहीं पाते। संस्कार भी इतने हल्के होते हैं कि ठहरते नहीं। मन का कोई विशेष स्वभाव होना या किसी विशेष चीज में मन की चिपकन बढ़ना, केवल गहरे संस्कारों के कारण ही होता है। संन्यासी के मन में प्रतिक्रियाएं गहरी न पड़ने के कारण संस्कार नहीं बनते और बाहर के किसी खास क्षेत्र की ओर उसका झुकाव नहीं होता। तो हम देखते हैं कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये मन की चार अवस्थाएं हैं। यह चार अवस्थाएं चार सीढ़ियां नहीं है कि पहले हम एक सीढ़ी पर चढ़ लें तब दूसरी पर। अपने नित्य ध्यान के अभ्यास से हम धीरे-धीरे नित्य अपनी इन चार अवस्थाओं को थोड़ा ऊपर उठाते हैं। यह चारों मन की शक्तियां हैं, जो एक साथ ध्यान से पैदा होती है।

जब बच्चा स्कूल जाता है तो शुरू में उसे सभी विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान लेना पड़ता है। जब सभी विषयों का प्रारम्भिक आवश्यक ज्ञान ले लेता है तब वह अवस्था आती है कि वह कुछ को छोड़कर कुछ पढ़े। यह उन लोगों की बातें है जो अपना जीवन बुद्धि की शक्ति के आधार पर निर्वाह करना चाहते हैं। लेकिन जो अपने जीवन का निर्वाह केवल आत्मिक शक्ति के सहारे करना चाहते हैं, उन्हें

मन का विकास करके इन चारों शक्तियों को पूर्णरूप से जागृत करना पड़ता है। और जब वह ब्राह्मी चेतना से उच्च स्तर की शिक्षा में जायेगें केवल तब वह अपनी शक्तियों का मनमाने रूप से प्रयोग कर सकेंगे। ❑

सबसे खराब अनुभूति; थकावट

प्रस्तुति : श्री सत नारायण शर्मा (094161-64702)

आराम के कर्म की विशेषता यह है कि आराम मनुष्य को थकावट से दूर ले जाता है। संसार की कोई भी वस्तु हो, वह किसी को रुचिकर लगती है; और किसी को नहीं। परन्तु पूरी सृष्टि में एक भी जीव ऐसा नहीं है, जिसे थकावट रुचिकर लगती हो। सृष्टि की सबसे खराब अनुभूति, थकावट है। थकावट हानिकारक भी है।

> **बाल अवस्था में शरीर में थकावट की परतें न होने के कारण ही बाल जीवन बहुत ही सुखदायी होता है।**

ज्यों-ज्यों, बच्चे की आयु में वृद्धि होती है, उसके बर्हिमुखी कर्मों में भी वृद्धि होती है। ध्यान की कमी में, मात्र निद्रा के समय के कर्मों द्वारा बर्हिमुखी कर्मों की कुछ थकावट निकल जाती है। शेष थकावट की परतों का संग्रह शरीर में होने लगता है। इन थकावटों के कारण ही, शेष आयु का जीवन बाल-अवस्था के जीवन से ज्यादा सुखदायी नहीं हो पाता। जिन व्यक्तियों के जीवन में, आराम के कर्म घटने लगते हैं, और परिश्रम के कर्म बढ़ने लगते हैं।

> **वे माया के चक्र में फंसने के कारण, अपनी ज्ञानेन्द्रियों के सुख के भोग हेतु कर्मेन्द्रियों को अधिक से अधिक व्यस्त रखते हैं।**

संसार में यह प्रचलित है कि सारी सांसारिक वस्तुओं को पाने के लिए परिश्रम, माया में फंसना है। अत: यह मान्यता होने लगी कि सांसारिक वस्तुएं ही माया हैं। माया का सन्धि विच्छेद है, मा+ या। मा का अर्थ है 'नहीं' और या का अर्थ है 'जो'। अर्थात् 'जो है नहीं' परनतु लगात है कि 'है'। हमें यह भ्रम हो जाता है कि 'यह है' और इसीलिए हमें माया से मोह हो जाता है। भ्रम की दुनिया में रहने वाला, जीवन की सच्चाईयों से दूर होता जाता है। सच्चाईयां से दूर जाना, मनुष्यों के दु:खों का कारण बन जाता है। माया के चक्र में फंसने के कारण, वे आत्म-धन

ना मानकर, इन्द्रिय-धन और वस्तुओं को अपने-का-सुख माध्यम समझने लगता है। इन्द्रिय-जगत में इन्द्रिय-जगत का धन है, और इन्द्रिय-जगत के धन से खरीदी हुई वस्तुएं भी हैं। अतः, यह वस्तु और इन्द्रिय जगत का धन, 'माया' नहीं है। इन्द्रिय जगत का धन और वस्तुएं तो राम और कृष्ण के पास भी थी।

सत्य यह है कि ये मात्र इन्द्रिय जगत के सुखों के साधन हैं। मनुष्य भ्रमवश, इन्हें सुख का साधन समझने की बजाय, सुख-देने वाला अस्तित्व मान लेता है।

ऐसे लोग इस भ्रम में, कि इन वस्तुओं के संग्रह से हमें सुख मिल जाएगा, इन्द्रिय जगत के सुख के साधनों के संग्रह हेतु, इन्द्रिय जगत के कर्मों में, अधिक से अधिक व्यस्त होने लगते हैं। ज्यों-ज्यों, मनुष्य में इन्द्रिय जगत की व्यस्तता बढ़ती है। उसकी अन्तर्मुखी होने की व्यस्तता कम होने लगती है। ज्यों-ज्यों अन्तर्मुखी होकर कर्म करने की व्यस्तता कम होती है, त्यों-त्यों वह इस सच्चाई से दूर होने लगता है, कि

जीवन का सुख तो मन में मात्र, ब्रह्म की शक्ति पिरोने में है। ब्रह्म की शक्ति, 'होनी' के रूप में, इन्द्रिय जगत में कार्यरत रहती है। सृष्टि की सारी इच्छाएं किसी ना किसी मन की हैं। जो मन अपने में ब्रह्म की शक्ति पिरोकर, अपने में होनी की शक्ति उत्पन्न कर लेता है; उसकी होनी की शक्ति, उसकी इच्छाओं की पूर्ति की ओर कार्यरत हो जाती है। परमात्मा उस शक्ति का नाम है, जो जीवों के मन का बल है।

अतः परमात्मा से दूर होने पर मन निर्बल हो जाता है। निर्बल मन उसे कहते हैं जो छोटी से छोटी समस्या आने पर, विचलित होकर दुखी हो जाए। बलवान मन वह है जिसे जीवन की बड़ी से बड़ी समस्या, विचलित ना कर सके। अध्यात्म के इतिहास में, ऐसे कितने उदाहरण हैं :

1. मीराबाई को विष का प्याला पीने को कहा गया। लेकिवन वह विचलित नहीं हुई।

2. सती सावित्री को अपने पति के जीवन-दान के लिए काल से लड़ना पड़ा। काल हार गया, सती सावित्री की जीत हुई।

3. विश्वामित्र जैसे बड़े योगी ने, राजा हरिश्चंद्र से मात्र इकबार झूठ बोलने के लिए बाध्य करने में, अपनी पूरी शक्ति लगा दी। परन्तु राजा हरिशचन्द्र और उनकी पत्नी का मन विचलित नहीं हुआ, और वे झूठ नहीं बोले।

जो भी व्यक्ति माया के चक्र को तोड़कर सत्य के रास्ते पर निकल जाएगा, तो परिश्रम का रास्ता छोड़कर आराम के कर्मों में सिद्ध प्राप्ति की और अग्रसर होकर, मन में अधिक से अधिक ब्रह्म की शक्ति पिरोकर, उसे तर-बतर करने में व्यस्त हो जाएगा, वह किसी ना किसी दिन, ब्रह्म-समाना अवश्य हो जाएगा। ❑

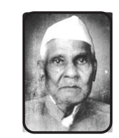

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-75 : भजन भाग अरु सेवयो, बंटे हो सेवा भाव।
बंटे जो मिलता ब्रह्म से, घटे न होय अभाव॥

भजन शब्द भज् धातु से बना है। अतः भजन का अर्थ हुआ-बांटना।

बांटने के लिए है क्या? और किस चीज के माध्यम से बांटना है?

हर प्राणी को जीवन के अनन्त पहलुओं का सुख चाहिए। इसलिए बांटना है; बदलने वाले क्षेत्र के अनन्त पहलुओं का सुख। जीवन में सब कुछ देने वाला केवल ईश्वर है।

जीवन के सुख का आधार आत्मिक शक्ति है; शरीर की या बुद्धि की शक्ति नहीं।

ईश्वरीय शक्ति (जिसका भण्डार प्रत्येक जीवात्मा है), बिल्कुल उसी तरह की शक्ति है, जैसी वृक्ष की जड़ों को जमीन, खाद और पानी से मिलती है। यहीं से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि जिस प्रकार वृक्षों के जीवन में सब कुछ देने वाला पेड़ का रस (Sap) है; बिल्कुल उसी तरह मनुष्य के जीवन की दाता; केवल आत्मिक शक्ति है, शरीर या बुद्धि की शक्ति नहीं।

ज्ञान तो केवल आंतरिक चेतनाओं में है

साधारण मनुष्य तो केवल तीन चेतनाओं में रहता है : घोर निद्रा, स्वप्न और

जाग्रत चेतना। तीनों स्तर की चेतनाएं, बाहर की दुनियां के अनुभव के आधार है। इसलिए उस ज्ञान के प्रदान करने में असमर्थ हैं, जो अन्दर के रस से सम्बन्धित हैं। इस ज्ञान की कमी के कारण ही, हर मनुष्य गलतफहमी (Ignorance) वश जीवन का केवल शरीर और बुद्धि की शक्ति के आधार पर चलाने का प्रत्यन करता है। अपने जीवन से दु:खों को मिटा नहीं पाता; बल्कि माया की जकड़ में और बंधता ही चला जाता है। हर प्राणी को जीवन के अनन्त पहलुओं का सुख चाहिए। इन सुखों की दाता आध्यात्मिक शक्ति है।

> **अत: जीवन के सुख सारे प्राणियों में तरह बंटे; कि किसी का सुख किसी दूसरे के दु:ख का कारण न बने। यह सामर्थ्य केवल आत्मिक शक्ति में है। जब आत्मिक शक्ति के आधार पर भजन होगा; तभी जीवन के सारे सुख अलग-अलग प्राणियों में इस तरह बंटेंगे, कि किसी एक प्राणी का सुख दूसरे प्राणी के दु:ख का कारण न बने।**

जिसके मन में सुख प्राप्त करने की जितनी शक्ति है; केवल उतनी शक्ति से संबंधित सुख का वह हकदार है। इस शक्ति के खत्म होने के बाद यदि वह ध्यान के अभ्यास के माध्यम से बार-बार शक्ति के भण्डार में जाकर शक्ति को लेकर बाहर के जगत में वापस नहीं आता, तो स्वाभाविक है कि उसे जीवन में केवल छोटे-छोटे सुखों से काम चलाना पड़ेगा; और बड़े-बड़े सुखों का उसका स्वप्न कभी पूरा नहीं होगा। इससे यह समझ में आता है, कि

> **केवल ईश्वर के ध्यान का अभ्यास ही जीवन के सबसे बड़े भजन की साधना का माध्यम है। ध्यान के अभ्यास से जिस अनुपात में, मन में ब्रह्म तत्व उभरने लगता है; केवल उसी अनुपात में वह अपने जीवन के अलग-अलग पहलुओं में सुख की शक्ति को उभार सकता है। यदि शक्ति बढ़ाता ही चला जाये, तो बड़े-से-बड़े सुख को जीवन में प्राप्त कर सकता है।**

ध्यान की शक्ति को इच्छा-पूर्ति शक्ति कहा गया है।

अलग-अलग इच्छाओं को पूरा करने के लिये; हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। यह सुमिरन ही तो है। इस सुमिरन का ध्येय यही है कि; प्राणियों के जीवन में

ऊंचे-से-ऊंचा सुख कैसे बांटा जा सके ? ये बातें हमें स्पष्ट रूप से बताती हैं; कि आत्मिक शक्ति का भजन, सुमिरन के माध्यम से होता है।

सुमिरन ही ऊंचे-से-ऊंचे भजन का आधार है।

सुमिरन; जो भजन का आधार है; व्यक्तिगत रूप में प्रयोग होता है। ईश्वर के ध्यान के अभ्यास से वातावरण शुद्ध होता है।

> **ये सभी विधियां वातावरण में केवल आत्मिक शक्ति को उभारती हैं; जिनसे न केवल व्यक्तिगत जीवन में, बल्कि अलग-अलग प्राणियों में, तरह-तरह के सुख 'करने' की शक्ति की बजाय 'होने' की शक्ति के आधार पर बांटे जा सकें।**

प्रकृति में दो तरह की शक्तियां हैं -'करने' की शक्ति और 'होने' की शक्ति। करने की शक्ति व्यक्तिगत शक्ति होती है। और जहां तक व्यक्तिगत शक्ति है; वहां तक व्यक्ति का अहं (Ego) भी काम करता रहता है; जो माया के दलदल में फंसाता है।

> **साधना कोई भी हो; यदि 'होने' की शक्ति के माध्यम से हो, तो मनुष्य अहं के प्रभाव से परे हो जाता है। 'होने' की शक्ति केवल आत्मिक शक्ति बढ़ाने के रास्ते पर है; या यों कहें कि जीवन के उत्थान के रास्ते पर है। यह निष्क्रियता के माध्यम से होता है।**

निष्क्रियता का अभ्यास करते-करते, जब इतना आनन्द उभर जाता है कि मन बाहर के सुख को छोड़कर, अन्दर के आनन्द की ओर बढ़ने लगता है। तब 'होने' की शक्ति का आधार 'आनन्द' हो जाता है। इस स्तर के व्यक्तियों के द्वारा, जो भजन होता है; वह ज्ञान काण्ड के स्तर का भजन है।

आनन्द का स्तर भी बढ़ता जाता है।

यह ब्राह्मी (Cosmic) चेतना के स्तर का है, या ईश्वरीय चेतना या अद्वैत (Unity) चेतना का; इसी के आधार पर जीवन का सुख व्यक्तियों में और समाज में बढ़ने लगता है।

> **ऊंचे-से-ऊंचे सुख के बंटने का आधार समाज के वायुमण्डल की स्वच्छता पर निर्भर करता है; और इस वायुमण्डल में रहने वाले**

व्यक्तियों में कितना आनन्द उभरा हुआ है; इसकी सामूहिक अवस्था पर निर्भर करता है।

भजन को समझने के बाद, शंका बिल्कुल नहीं रहती; कि कौन व्यक्ति कितना सुखी है? इसका आधार तो केवल उसके मन में ब्रह्म तत्व का उभरना है।

ब्रह्म के तत्व को जो जितना अपने मन में उभार लेता है; उसी के अनुपात में वह कुछ सुखों का हकदार बन जाता है।

ब्रह्म सुख उसे लीला शक्ति के माध्यम से प्रदान करता है। यह लीला शक्ति, अनन्त का खेल है; कोई भी मनुष्य इसे नहीं समझ सकता। बुद्धि के विकास का आधार, बाहर की सीमाओं के क्षेत्र में मन का विचरण है।

जो, अपने मन में ब्रह्म तत्व को उभार कर सुख का अधिकारी बन जाता है; उसके जीवन में सुख केवल आगे बढ़ता है, कम कभी नहीं होता।

लेकिन समाज में हमेशा से ऐसे लोगों की संख्या अधिक रही है; जिनके जीवन में सुख आता है, और भाग जाता है। निरन्तर आगे नहीं बढ़ता। वे इस सुख के अधिकारी नहीं बनते।

प्रश्न उठता है कि जो जीवन में सुख का अधिकारी नहीं है; उसके जीवन में सुख आता ही क्यों है?

इस प्रश्न का उत्तर यह है, कि सभी के जीवन में शुरू से अन्त तक दो तरह की शक्तियां काम करती रहती है।

1. एक राम रूपी शक्ति जो कि जीवन में सुख बढ़ाने में निरन्तर लगती रहती है। और
2. दूसरे रुलाने वाली शक्तियां जिन्हें रावण की शक्ति कहते हैं।

सभी का जीवन; कुरुक्षेत्र का मैदान है।

उपर्युक्त शक्तियों को धनात्मक (Positive) और ऋणात्मक (Negative) शक्तियां कहा है।

जीवन के वे सुख जो आकर भाग जाते है; रावण-रूपी शक्तियों द्वारा जीवन में आते हैं।

ये ऋणात्मक शक्तियां जीवन में कौन-सी है? इनको समझना इतना आसान नहीं है। लेकिन इन शक्तियों का आधार केवल व्यक्तिगत अहं (Ego) होता है, जो शारीरिक शक्ति और बुद्धि की शक्ति के क्षेत्र में अपने-आप क्रियात्मक हो जाता है।

इसलिए जिन व्यक्तियों के जीवन में साधाना का आधार; तपस्या हो या सेवा, सुमिरन हो या भाजन; शरीर और बुद्धि की शक्तियां होती हैं। जिनमें अहं पिरोया होता है।

निरन्तर आगे बढ़ने का गुण का एक मात्र स्रोत, ब्रह्म तत्व है। यह सत् है, जो प्राणियों में निरन्तर आगे बढ़ने के रूप में प्रगट होता है, और अखण्डता के नाम से जाना जाता है। निर्जीव वस्तुओं में यही, न बदलने वलो गुण के रूप में जाना जाता है।

किस तरह के समाज में चोरी आदि अपराध और दुर्घटनाएं होती है? और क्यों?

ऐसा केवल उस समाज में होता है; जिसमें सुख, उन शक्तियों के माध्यम से करते है; जिनमें उनका अहं पिरोया हुआ है।

आत्मिक शक्ति में कभी भी अहं पिरोया नहीं होता। इसलिए यदि अपने सुख का प्रबन्ध अपने मन में ब्रह्म के तत्व को उभार कर सुख के अधिकारी बन कर करें; तो उनके जीवन में सुख निरन्तर आगे बढ़ेंगे।

एक बार आत्मिक अवस्था ठीक हो जाने के बाद, निरन्तर अच्छा ही होता जाएगी; कभी खराब नहीं होगी। जीवन में दुर्घटनायें कम होगी और समाज में अपराध कम होते ही जायेंगे। अब हम रामायण की निम्न चौपाई पर ध्यान देंगे -

कह हनुमन्त विपति प्रभु सोई।
जब तब सुमिरन भजन न होई॥

इस चौपाई का यह अर्थ नही है : कि सुमिरन भजन करने से जीवन के दु:ख मिट जायेंगे। इसका अर्थ तो केवल यह है कि ईश्वर का ध्यान करते-करते जब जीवन

में सुमिरन भजन होने लगेगा; तब कोई विपत्ति नहीं आएगी। चौपाई की दूसरी पंक्ति का अर्थ यह है कि जब ध्यान में इतनी निपुणता हो जाती है कि जीवन का आधार 'होने' की शक्ति हो जाये और 'करने' की शक्ति होने की शक्ति में बदल जाये : केवल तब मनुष्य विपत्ति से परे की अवस्था में पहुंच सकता है। इसके पहले जीवन में उतार-चढ़ाव आते ही रहेंगे।

जब तक साधना का आधार 'करने' की शक्ति होगी जिसमें 'अहं' पिरोया हुआ है; तब तक आप के जीवन में यदि कोई सुख आ भी जाता है, तो वह स्थायी नहीं रहता। भागता हुआ ही दिखायी पड़ता है।

इसका कारण केवल यही है; कि ब्रह्म, जो कि सुख का दाता है; अभी मन में ठीक से उभरा नहीं है। इसीलिए अन्दर का आनन्द बाहर के सुख से लड़ कर जीतने की अवस्था में नहीं है। इस अवस्था के पहले वे सुख भी आ जाते है; जिनके आप अधिकारी नहीं हैं। इसलिए वे जीवन में आकर चले भी जाते हैं। इसी को जीवन का उतार-चढ़ाव कहते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों ध्यान के अभ्यास से आत्मिक शक्ति मन में उभरने लगती है; और साधना करने वाला, जिस वायुमण्डल में है, उसमें पिरोने लगती है; त्यों-त्यों अपने आप उस स्तर का भजन जीवन में होने लगता है। जिस स्तर के भजन के माध्यम से हमारे जीवन में केवल वही सुख आते हैं जिनके हम अधिकारी बन जाते हैं। ऐसे भजन का आधार सुमिरन है।

साधना क्या है? साधना के माध्यम क्या है? और इन माध्यमों द्वारा केवल गहरे आराम के अभ्यास से प्रकृति में अपने-आप तपस्या, सेवा, सुमिरन, भजन कैसे होने लग जाते हैं?

जैसा ऊपर की रामायण की चौपाई बताती है; सुख-दु:ख से परे तो हम केवल तब होते हैं, जब हमारे जीवन में 'होने' की शक्ति पूर्णरूप से प्रगट हो जाती है; और 'करनी' 'होने' में बदल जाती है। दूसरे शब्दों में हमारी कर्मेन्द्रियों को क्रियाओं के क्षेत्र में दिशा देने वाली शक्ति; बुद्धि न होकर, हमारी आत्मा हो जाती है। ऐसे साधक के मन की चेतना पांचवीं चेतना होती है। इस अवस्था तक पहुंचने के बाद साधक के लिए पतन के रास्ते पर जाना असम्भव हो जाता है।

नीचे की कक्षाओं के विद्यार्थियों को एक साथ कई विषय पढ़ने पड़ते हैं। लेकिन जब (M.A.) का विद्यार्थी हो जाता है; तब वह केवल एक ही विषय पढ़ता है। उसी प्रकार जीवन के ज्ञान के नीचे स्तर के विद्यार्थियों को बहुधा एक से ज्यादा साधनाएं करनी पड़ती है। लेकिन ऊंचे स्तर के विद्यार्थियों को केवल एक ही साधना करनी पड़ती है। चाहे वह किसी भी माध्यम से आगे बढ़े। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी- आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 3 बजे से सायं 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
866, सेक्टर 3, अर्बन एस्टेट, रोहतक-124001
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER